PATLIPUTRA JOURNAL OF INDOLOGY

ISSN: 2320-351X

Patliputra journal of indologyis an international double – Blind Peer Revieved, refered and indexed publishedin english and hindi for scholars, Practitioners And Students. The journal is welcoming original research articles, Book Reviews ,Commentaries Reviewed Articles Technical Notes Snnipetscase Studies Books, Theses And Dissertations Relevant To The Fields Of Agricultural Science, Horitucultuге Environmental Science , Food Science, Ayurved, Biochemistry, Biotechnology, Botany, Chemistry, Commerce, Economics, Engineering, Computer Science, Geology, Geography, History, Library And Information Science, Linguistics, Literature, Management Studies, Mathematics, Medical Science, Microbiology, Molecular Biology, Nursing, Pharmacy, Physics, Social Science And Zoology. All types of articals submitted to the journal are double – Blind peer reviewed and subjectto be reffered at the discretion of the members of the editorial board for publication.

Patliputra journal of indology is listed on different indexing agencies such as google scholar, directory of research journal indexing, base-bielefeld academic search engine and Einstein Institutefor Scientific Information (JIF)

Dr. Daya Shankar Tiwari
Editor and Chief
Phone: 6262752167

Online Submissions

Already have a Username/Password for Patliputra Journal of Indology?

GO TO LOGIN
Need a Username / Password?

GO TO REGISTRATION
Registration and login are required to submit items online and to check the status of current submissions.

Submission Preparation Checklist

As part of the submission process, authors are required to check off their submissions compliance with all of the following items, and submissions may be returned to authors that do not adhere to these guidelines.

1. The submission has not been previously published, nor is it before another journal for consideration (or an explanation has been provided in Comments to the Editor).
2. The submission file is in Open Office, Microsoft Word, RTF, or Word Perfect document file format.
3. Where available, URLs for the references have been provided.
4. The text is single-spaced; uses a 12 point font; employs italic , rather than underlining (except with URL addresses); and all illustrations, figures , and tables are placed within the text at the appropriate points, rather than at the end.
5. The text adheres to the stylelistic and bibliographic requirements outlined in the Author Guidelines, which found about the journal.
6. If submitting to a peer-reviewed section of the journal, the instructions in Ensuring a Blind Review have been followed.

Privacy Statement

The names and email addresses entered in this journal site will be used exclusively for the stated purpose of this journal and will not be made available for any other purpose or to any other party.

TABLE OF CONTENTS

1	Dr. U.K. Jain	:	Publication Trends in Physics Education: A Bibliometric Study.
2	Dr. Y.K. Sharma	:	Towards " NA VIA (D,P) With Share and Tigress and a Novel Zero-Degree Detector.
3	Dr. Rajesh Chourasia	:	Perception of the Importance of Chemistry Research papers and Comparison to citation rates.
4	Dr. Kriti Shrivastava	:	Activated biochar prepared From plaintain peels: Characterzation and Rhodamine Badsorption data set.
5	Dr. Aruna Parteti	:	Selective and Sensitive Liquid- Liquid Extraction and Spectrophotometric Determination of Tellurium(IV)
6	Dr. M.H. Martin	:	Arundhati Roy's: Voice for Small Things in " The God of Small Things"
7	Dr. P.N. Sanesar	:	Teacher Taught Relationship- A Steep Decline
8	Dr. Rashi Gautam	:	A Study of Job Satisfaction, Occupational Stress and School Climate of Secondary School Teachers.
9	Dr. Divya Chansoria	:	Teaching Learning Methods and Legal Education.
10	Dr. Pratibha Gupta	:	Development in Control of Time-Delay Systems for Automotive Powertrain Applications.
11	Dr. Bhuneshwar Tembhare	:	Religious Tourism Development in India: Opportunities and Challenges.
12	Dr. J.R. Jhariya	:	Sustainable Development of Tourism in India.
13	श्रीमति नसीम बानो	:	महात्मा गांधीजी के आंदोलन मे नारी की भूमिका
14	डॉ. अनीता मेश्राम	:	न्यायिक सक्रियतावाद : अयोध्या फैसले के विशेष संदर्भ में
15	डॉ. ज्योति सिंग	:	भारत मे महिलाओं की बदलती स्थिति
16	डॉ. अर्जुन सिंग बघेल	:	विवाहित कामकाजी महिलाओं की भूमिका एवं आर्थिक सशक्तिकरण एक अध्ययन
17	सी.एस. परस्ते	:	प्राचीन भारत मे कामकाजी वर्ग की स्थिति को समुन्नत करने में श्रेणियों की योगदान
18	डॉ. टी.पी. मिश्रा	:	मानवाधिकार एवं महिलाएँ
19	डॉ.अरुणा	:	होल्कर वंशीय इन्दौर जिबौडे के भित्ति चित्रों की प्रमुख विशेषताएँ
20	डॉ. एस.पी. धुमकेती	:	भारत मे जनजातीय लोक संस्कृति
21	डॉ. पी.एल. झारिया	:	वाल्मीकि एवं राजशेखर : एक समीक्षा (राम विवाह के सन्दर्भ में)

भारत में जनजातिय लोक संस्कृति

डॉ. एस.पी. धूमकेती
हिन्दी विभाग
शासकीय कन्या महाविद्यालय मंडला (म.प्र.)

सारांश

विश्व के महान देशों में भारत का स्थान सम्मानजनक है। भारत अति प्राचीन काल से ही अपनी संस्कृति के लिए विश्वविख्यात है। सर्वप्रथम संस्कृति का विकास यही से माना जाता है। अन्य देशों की अपेक्षा भारत में संस्कृति को विशेष महत्व दिया गया है, संस्कृति को भारत का आभूषण कहना उचित होगा जिसने भारत के स्वरूप को सौंदर्य बना दिया तथा इसकी ख्याति विश्वभर में फैला दी। भारत संस्कृति को जीवित रखने यहां की जनजातियों विशेष भूमिका है। जनजातियों की संस्कृति भारतीय संदर्भ में भारतीय लोक संस्कृति का ही अभिन्न अंग है। लोक से तात्पर्य सामान्य जन से है। इनकी निजी पहचान नही होती ये अपने समुदाय में रहते हैं। और समुदाय के रूप में जाने जाते हैं। जंगलो पर्वतो, मरुस्थलों एवं पठारी क्षेत्रों में रहने वाले आदिवासी, कबीले,कबीले जिनमें गौंड, भील कोल भारिया संथाल इत्यादि अनेक जनजातियों का वर्ग होगा है। इन्ही का सम्मिलित रूप लोग कहलाता है।

मुख्य शब्दः पौराणिक मान्यताओं, पौराणिक परम्परा, जनजाति समूह, संस्कृति, जनजातियॉं, भारत की लोग कला ।

प्रस्तावना :

संस्कृति मनुष्य के अतीत एवं वर्तमान युग के निर्माण की सफलता है। संस्कृति का शाब्दिक अर्थ अच्छी स्थिति या सुधरी हुई स्थिति है। वर्तमान में संस्कृति शब्द को अंग्रेजी के कल्चर के अर्थ में लिया जाता है, जिसका सम्बन्ध परिष्कार करने, ठीक करने से है। भारत की संस्कृति का स्वरूप–धर्म, आध्यात्म, कला, विज्ञान, पूजन विधि, नैतिक आचरण, जीवन जीने की कला आदि पर आधारित है। जिस तरह विशाल समुद्र अनेक छोटी–बड़ी सीधी वक्र धाराओं से मिश्रित सरिताओं को स्वयं में समाहित किये हुए है। ठीक उसी तरह भारतीय संस्कृति भी विभिन्न धर्म जाति समुदाय का अपने में समेटे हुए है। यह निरंतर उन विषम जातीय तत्वों को एक करने का प्रयास करती है, जो इसे समग्र बनाते हैं। इसलिए भारत के संदर्भ में विभिन्नता में एकता कहा जाता है। भारत के संस्कृति को सुरक्षित रखने तथा उसे पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित करने का श्रेय यहां की जनजातियों को जाता है।

जनजातियॉं

दुरूह क्षेत्रों (जहॉं पहुँचना बहुत कठिन है) में जीवन यापन करने वाले कुछ जातीय समूह विकास की राह से पृथक हो गए है, जो प्रायः वन्य जाति, आदिवासी, पर्वतवासी और आदिम जाति कहलाती है। इनमें परम्परा एवं रूढ़िवादिता का बोलबाला होता है तथा धर्म की प्रधानता होती है। प्रायः शहरी क्षेत्रों में रहने वाली जनजातियो का अन्य संस्कृतियो के संपर्क में आने से उनकी स्वयं की संस्कृति का लोप हो जाता है। परन्तु दूर दराज जंगलों मे निवास करने और अपनी परम्परा, सामाजिक के साथ सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं धार्मिक व्यवस्थाओं का जटिलता से पालन करने के कारण आज भी इन समूहों ने अपनी संस्कृति को बचा कर रखा है। ये जनजातियॉं भारत के विभिन्न क्षेत्रों में अपने धर्म, पौराणिक मान्यताओ, रीति–रिवाजों एवं सामाजिक व्यवस्थाओं के साथ निवास करती है।

जनजातियों में लोक संस्कृति

भारत में निवासित सभी आदिम वनवासी जो प्रायः जनजाति समूह कहलाते है। जैसे गौड़, भील कोल संथाल बैगा, सहरिया आदि सभी समूहो की परम्परा, तथा मान्यताओं का मिश्रित रूप लोग संस्कृति कहलाती है। सामान्यतः इन सभी समुदायों (जनजातियों) का रहन–सहन भोजन, वस्त्र, श्रृंगार, नृत्य, गीत कला सभी भिन्न–भिन्न है। परन्तु समस्त मणियों को एक मुकुट में जड़ दिया जाए तो इनका ये सम्मिलित रूप ही लोक संस्कृति है।

जनजातिय संस्कृति भारत की लोग संस्कृति का ऐसा है। जिसे अलग नही किया जा सकता है। इससके अंतर्गत सहवर्ती (समकालीन) समाज के द्वारा मान्यता प्रदान की जाने वाली वे सभी परम्पराएँ जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक निरंतर पहुँचती रहती है जनजातीय संस्कृति का ही अंग है। जनजातीय संस्कृति के कार्य क्षेत्र के अंतर्गत आदिवासी पौराणिक या परम्परागत कथाएँ, गीत, नृत्य, तीज त्यौहार, विवाह, पूजन विधि, साज–श्रृंगार, सौंदर्य की अभिव्यक्ति समाहित है।

जनजातियों की लोक संस्कृति के अंतर्गत धार्मिक कर्मकाण्ड, सामाजिक जीवन प्रणाली, गृहस्थ प्रबंध के कार्य एवं सांस्कृतिक प्रवाद (किंवदंती) को पृथक नही किया जा सकता है। जनजातीय समुदाय या वर्ग के लोग जो भी कार्य करते है। अपनी लोक संस्कृति को ध्यान में रखकर करते है। जनजातियों के द्वारा किये जाने वाले समस्त कार्यों में धार्मिक विश्वास की झलक देखने को मिलतह है। वे जिस भी नवीन कार्य का प्रारंभ करते है उनमें उनकी व्यक्तिगत अभिव्यक्ति दिखाई पडती है। उदाहरण स्वरूप जब जन–जातियों के द्वारा कुटीर (झोपड़ी) का निर्माण किया जाता है। तो उसके दरवाजे में अपनी विशेष जाति का खुदा हुआ चित्र बनाया जाता है एवं घर आँगन की दीवारो को विशेष प्रकार की जातिगत चित्र आकार, संख्या आदि से सजाया जाता है। इसके अलावा वनों से प्राप्त वस्तुओं के भण्डारण करने (जुटाने) हेतु घरों से कूच करने (बाहर जाना) या विदा लेने का समय निर्धारण का ख्याल एवं पूजन विधि, धार्मिक कार्यो एवं रिवाजों का पालन करना कृषि से संबंधित अहम (महत्वपूर्ण) कार्य जैसे बोआई कटाई आदि के समय अपनी विशिष्ट लोक गीत एवं सामूहिक नृत्य को शामिल किया जाता है। ये समस्त क्रियाएँ आदिवासी लोक संस्कृति का अभिन्न अंग है। सो उन्हें अपनी पीढ़ियों से चला आ रही परम्परा से प्राप्त हुई है। भले ही आदिवासी लोक गीतों की बोलियाँ बहुत अधिक विख्यात न हो परन्तु उनके लोकगीतों और नृत्यो मे विरह और उल्लास के भाव स्पष्ट देखने को मिलते हैं।

संसार के प्रत्येक भाग के मूल निवासियों ने अपनी लोक संस्कृति को संरक्षित करके रखा है लोक संस्कृति की उत्पत्ति प्रकृति के बीचो बीच हुई है। लोक संस्कृति में जनजातियों ने धर्म एवं पौराणिक परम्पराओं के प्रति आस्था और विश्वास को उच्च स्थान दिया गया है।

जनजातीय लोक संस्कृति का इतिहास

समूचे भारत ही नही बल्कि पूरे विश्व में पाई जाने वाली सभी जनजातियों के स्वरूप का प्रारंभ प्रागैतिहासिक काल से ही माना जाना चाहिए। सभी जनजातियाँ जंगलो में निवास करती है तथा वनो से ही प्राप्त वनस्पतियों से अपनी आजीविका चलाती है। प्रागैतिहासिक काल में मनुष्य पूर्ण रूप से जंगलो पर ही निर्भर था। जंगलों से प्राप्त कंद मूल फल पत्तियों को खा कर अपना भरण पोषण करता था। उस काल में मनुष्य भोजन के लिए पशुओं एवं पक्षियों का शिकार भी किया करते थे तथा शिकार के लिए औजार पत्थरों से बने होते थे। प्रागैतिहासिक काल में मनुष्य पत्थरों का आयोग अधिक करते थे जैसे पत्थरों की बनी गुफाओं में रहना एवं पत्थरों से बने औजारों का प्रयोग करना आदि। इसलिए उस काल को पाषाण युग भी कहते हैं।

काल में मनुष्य भोजन के लिए पशुओं एवं पक्षियों का शिकार भी किया करते थे तथा शिकार के लिए औजार पत्थरों से बनें होते थे। प्रागैतिकहासिक काल में मनुष्य पत्थरों का उपयोग अधिक करते थे

जैसे पत्थरों की बनी गुफाओं में रहना एवं पत्थरो से बने औजारो का प्रयोग करना आदि। इसलिए उस काल को पाषाण युग भी कहते हैं।

जनजातीय समुदाय की संस्कृति का विकास इसी पाषाण युग से प्रारंभ हुआ है। पाषाण काल में मनुष्य जब अपनी बुद्धि के विकास की (प्रारंभिक) अवस्था की (सीढ़ि) चढना शुरू किया तब उसने जंगलो में मिलने वाले प्राणियों एवं वनस्पतियों को अपना भोजन बनाया। पाषाण काल में मनुष्य खानाबदोशी जीवन जीता था। और विभिन्न स्थानो मे भोजन के लिए भ्रमण करता था। अतः स्वयं की पहचान, भौगोलिक क्षेत्रों एवं अपने शिकार कि पहचान बनाए रखने के लिए पत्थरों व गुफाओं पर अनेक शिल्पों का निर्माण करते थे। इन शिल्पों में मानव ने स्वयं का चित्र, पशु–पक्षियों का चित्र, विभिन्न आकृतियाँ (जो शायद भौगोलिक क्षेत्र को दर्शाती रही होगी) पेड़ पौधों, सूर्य चन्द्र आदि को सम्मिलित किया थ। इन्ही शैल चित्रों को जनजातीय समुदाय के लिए अपने पूर्वजों के रूप में पूजते है। आत अनेक ऐसी जनजातियो है जिन्होंने पेड़ पौधों एवं पशु पक्षियों को अपना टोटम मानकर उसके प्रति आस्था तथा विश्वास को दर्शाते है तथा उनकी पूजा करते है। ये टोटम जनजातियों की लोक संस्कृति व आस्था का प्रतीक है और इसकी नींव पाषाण युग में रखी गई। अलौकिक मान्यताओं को जन्म देते हुए विभिन्न जनजातीय समुदाय के लोगों के द्वारा वन्य प्राणियों एवं पेड़–पौधों से अपना संबंध जोड़ा जाता है और अपने टोटम के प्रति विशेष श्रद्धा रखा जाता है। तथा अपने टोटम को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। ऐसी मान्यता है कि पाषाण काल में मनुष्य को जिन हिंसक पशुओं से भय होता था, तो वे अलौकिक भाक्ति के द्वारा उन हिंसक पशुओं को अपने वश में कर लेते थे। और उनके शिंग खाल पूँछ आदि को अपने शरीर में धारण कर लिया करते थे (ये जादू टोना का ही हिस्सा था) आज जो जनजातियो के द्वारा आभूषणों के रूप में श्रृंगार की वस्तुओं को अपने शरीर में धारण किया जाता है। तथा गोदना गोदवाने की प्रथा है। इन सभी के पीछे का काल्पनिक मान्यताएँ जुड़ी हुई है, जो इन जनजातीय समुदाय की संस्कृति का एक हिस्सा (अंग) है।

जनजातियों में लोक कलाएँ

भारतीय जनजातियों की लोग कला भारत की संस्कृति का प्रमुख अंग है। भारत की लोग संस्कृति में जनजातियों की लोक कला एवं परम्पराओ का एक विशिष्ट स्थान है। जनजातियों की लोक कलाएँ एवं प्रथाएँ ही भारतीय लोक संस्कृति का आधार स्तंभ है। भारत की जनजातियों में विभिन्न प्रकार की लोक कलाएँ पाई जाती है।

परम्परागत तरीकों से हस्तकला के रूप में श्रम करने वाले समुदाय को समाज शताब्दि वर्ष पहले से ही जातीय पहचान दे चुका है जैसे चमड़े का काम करने वाले चमार, मिट्टी के बर्तन बनाने वाले कुम्भकार (कुम्हार), स्वर्ण का कार्य करने वाले स्वर्णकार, लोहे को गलाकर उसका औजार बनाने वाले लोहार इत्यादि ऐसी बहुत सी जातियाँ है जो परम्परागत रूप से दैनिक उपभोग की वस्तुओं का निर्माण कर उन्हें बेचने का काम करती है ठीक इसी तरह जनजातियों के द्वारा भी अनेक हस्तकला की वस्तुओं का निर्माण एवं बिक्री कार्य किया जाता है। इनमें सौंदर्यबोध एवं साज–सज्जा की सामग्रियाँ भी शामिल होती है। इन हस्तकला विधि को सुरक्षा, सौंदर्यभाव एवं लोक प्रसिद्धि मे अनेक जनजातियों के प्राचीन चिन्ह, एवं स्मृतियों की झलक देखने को मिलती है जो जनजातियों की प्राचीन कला एव संस्कृति का प्रमाण है। जनजातीय वर्ग के लोग वनो से प्राप्त घास, पत्ते, बाँस, लकडी तथा मिट्टी आदि से प्रयोज्य (प्रयोग करने योग्य) एवं मनमोहक वस्तुओं का निर्माण अपनी परम्परागत शैली से किया जाता है। यही कारण है कि जनजातियों की कारीगरी में बहुरूपता के साथ आदिवासीवन की छवि दिखाई देती है। और यही कलाएं हमारे देश की लोग संस्कृति का एक विशिष्ट अंग है। इसलिए जनजातियों का भारत की लोक संस्कृति में विशेष महत्व है।

कुछ जनजातियों की लोक कलाएँ निम्नानुसार है –

1) लोक चित्रकला – जनजातियो मे चित्रकला का जन्म प्रागैतिहासिक काल से माना जाता है। इसका प्रमाण गुहाग्रहों की दीवारो मे बने चित्र है। जिसमे आदिम मानव ने अनेक चित्रों को चित्रित किया था। ये चित्र पत्थरो एवं गुफाओ की दीवारो में बनी होती थी। इन चित्रों मे मनुष्य अपने शिकार एवं शिकार करने की कला को चित्र के रूप में संरक्षित करके रखता था। ताकि वह अपने भोजन व भोजन प्राप्त करने की कला को भूल न सके और हजारो वर्ष बाद भी जंगली जातियाँ इन्हीं कलाओं से जीवन यापन करती आ रही है।

जनजातियों की संस्कृति में चित्रकला का महत्व इस बात से भी सिद्ध होता है कि जब भी जनजातियो के द्वारा अपने लिए निवास (घर) बनाया जाता है तो उसमें चित्रकारी को विशेष स्थान दिया जाता है। घर के दरवाजों एवं दीवारों पर बने विभिन्न प्रकार के भित्तिचित्र एवं साज–सज्जा आज भी ग्रामीण जनजातीय समुदाय की स्थापत्य कला मे शामिल है एवं जनजातियों के निवास स्थानों मे इसे देखा भी जा सकता है।

2) मिट्टी शिल्प – मानव सभ्यता जब अपने विकास के आरंभ में थी तब उसने मिट्टीके बर्तनों को बनाना प्रारंभ कर दिया था। आदिम अवस्था मे मनुष्य भोजन को सग्रहण करता था। वह अपने भोजन को नारियल एवं बॉस के खोल में रखता था। और जब मनुष्य शनै–शनै मनुष्य की बुद्धि का विकास हुआ तब उसने चाक का आविष्कार करके मिट्टी के बर्तन बनाना शुरू कर दिया। आदिवासी वर्ग के लोगो के बर्तनो की बनावट और उत्खनन से प्राप्त होने वाले हजारो साल पुराने बर्तनो की बनावट लगभग एक सी ही है। इससे यह माना जाता है कि जनजातियो ने हजारो वर्ष पुरानी कला को आज भी बचा कर रखा है। सिन्धु सभ्यता की खुदाई को उत्खननकत्ताओं को कई प्रकार के बर्तन मिले हैं। जनजातियो के द्वारा मनाएँ जाने वाले तीज–त्यौहार व मेलों में विभिन्न लोकांचलो की परम्परागत मिट्टी शिल्पकला से तैयार किये जाने वाले खिलौने बर्तन और देवी–देवताओं की मूर्तियाँ देखने को मिलती है। जो भारत की लोक संस्कृति का प्रमाण सिद्ध करती है।

3) काष्ठ शिल्प – आदिवासी अंचलो मे जंगलो के बीचो–बीच निवास करने वाली जनजातियों को अपने लिए घरो का निर्माण या व्यापार के लिए वस्तुओं का निर्माण करना हो वे वनों पर ही आश्रित होते है वनों मे अधिकतर लकड़ियाँ ही मिलती है इसलिए आदिवासी लोग जंगलो से प्राप्त होने वाली लकड़ियों से अपने घरो के लिए खिडकी दरवाजो व आंगन मे लगाए जाने वाले मेडों इत्यादि को परम्परागत तरीको से स्वयं बनाते है। जनजातीय समुदाय के लोग अपने घर के खिडकी एवं दरवाजों में विभिन्न रूपाकारों को बनाते हैं। ऐसी मान्यता है कि ये रूप आकार उनके पूर्वजों की होती है जो उनके घरों को बुरी भाक्तियों से बचाती है. ये परम्परागत कलाऐं ही लोग कलाएँ कहलाती है। जो भारत की गौरवशाली लोक संस्कृति की विरासत है।

काष्ठ कला का जन्म पाषाण काल से माना जाता है। नुकीली लकड़ी को एवं नुकीले पत्थर को बड़ी सी लकड़ी में बाँध कर भाले की रूप में उसका प्रयोग शिकार के लिए किया जाता था। इसके बाद जब नव पाषाण काल मे मनुष्य ने मिट्टी के बर्तन बनाना सीख लिया था तब बर्तनो को एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाने के लिए उसने बैलगाडी का निर्माण किया। बैलगाड़ी से पूर्व आदिमानव ने पहिये का निर्माण किया था। इस तरह काष्ठ कला का नमूना हमें हजारो वर्ष पूर्व भी देखने को मिलता है।

4) कंघी कला – सामान्य ढंग से समस्त भारत के ग्रामीण अंचल एवं विशिष्ठ तौर पर आदिवासी समुदायो में अनेक प्रकार के कंधियो का प्रचलन प्राचीन काल से चला आ रहा है। जनजातीय समुदायों के लोगो के द्वारा कंघी को विशेष महत्व दिया जाता है साज सज्जा या अलंकरण की वस्तुओं में कंघी का खास स्थान है। कंघियों को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इस पर सुंदर–सुंदर रत्नो से जड़ाऊ कार्य के साथ अन्य स्त्रोतों से इसका खास श्रृंगार करके इसे प्रयोग के लिए तैयार किया जाता

है। विशेष तौर पर बंजारा जाति के द्वारा कंघी कला का प्रयोग किया जाता है। अपनी परम्परागत शैली से तैयार किये जाने वाले श्रृंगार की वस्तु के रूप में कंघी कला जनजातियों की लोक कला है और इसका भारत की लोक संस्कृति में अहम स्थान है।

5) तीरंदाजी कला – जंगली जनजातियों में तीर–धनुष साथ रखने की मान्यता है। ये तीर–धनुष बॉस, मोरपंख लकड़ी, लोहे, रस्सी आदि से बनाये जाते है। जनजातीय लोग शिकार के लिए तीर–धनुष का प्रयोग करते है। भील, पहाडी कोरवा, कमार आदि जनजाति तीरंदाजी मे माहिर होते हैं। धनुष–बाध भील जनजाति की मुख्य पहचान मानी जाती है प्रत्येक भील पुरुष वस्त्रों के साथ धनुष बाध को भी अपने कंधे पर धारण करता है। धनुष–बाध चलाने मे भीलो का निशाना एक सटीक होता है। भील जनजाति स्वयं को एकलव्य का वंशज मानती है। इसलिए ऐसी मान्यता है कि वे तीर चलाने में अपने अंगूठे का प्रयोग कम ही करते है प्रत्येक भील पुरूष अपने लिए धनुष बाण स्वयं तैयार करता है जिस तरह भील धनुष बाण चलाने की कला में निपुण होते है उसी तरह इसे बनाने मे भी कुशल होते हैं। धनुष बाण के लिए कौन सी लकडी श्रेष्ठ होगी इसका ज्ञान भीलो को भली–भॉति ज्ञात होता है। पारम्परिक तरीको से निर्मित धनुष बाण देखने में सामान्य होती है परन्तु चलाने में इनका प्रदर्शन श्रेष्ठ होता है साथ ही यह मजबूत भी होती है। राजा महाराजाओ के द्वारा युद्ध भूमि में प्रयोग किये जाने वाले अस्त्र–शस्त्र का स्थान अब बन्दूक गोलो व मिशाइलो ने ले लिया है। ऐसे में जनजातियों के द्वारा इन शस्त्रो को प्रयोग करने का अर्थ है भारत की प्राचीन लोक कला एवं विरासत को बनाए रखना या सुरक्षित रखना।

6) भीली चोमल, मोतिमाला की कारीगरी – भील एवं भिलाला जनजातियों की स्त्रियॉ परम्परागत तरीको से रंग–बिरंगे धागो की सहायता से शोभन (आकर्षक) थैलियाँ बनाती है इनमें वे अपनी परम्परागत चिन्हो को बनाती है। सामान्य जीवन के अन्तर्गत दैनिक कार्यों के लिए प्रयोग में लाया जाता है। इसके अतिरिक्त ये महिलाएँ सुन्दर मोतियों की मालाएँ भी बनाती है इनमें सबसे विशिष्ठ बात इन्हे गुँथने की कला है रंगीन धागों के गुँथवन से माला में सुन्दर जालियाँ एवं पुष्प की आकृति बन जाती है इनमें छोट–छोटे विभिन्न रंग–बिरंगे मोतियों का प्रयोग सर्वाधिक होता है। इन परम्परागत तरीको से निर्मित किए जाने वाले मोतियों की माला लोक कला का महत्वपूर्ण अंग है। ये लोक कलाएँ भारत की लोक संस्कृति की धरोहर है जिसे जनजातियो ने अपनी मान्यता परम्परा, विश्वास व अर्थ के साधनों के माध्यम से सुरक्षित रखा है।

लाख शिल्प – वनों में विभिन्न प्रकार के पड़े–पौधे पाए जाते हैं। जिनमें से फल, फूल पत्ती तनो आदि को प्राप्त करके जनजातीय वर्ग अपनी आजीविका चलाते है। जंगलो में कुछ ऐसे वृक्ष पाए जाते हैं जिनसे गोद या रस निकाला जाता है। इन गोद तथा रसो को गरम किया जाता है और उनसे लाख बनाया जाता है और इनमें अलग–अलग रंगो को मिलाकर लाख के आभूषण (कडा), खिलौने, चौखटा (डिब्बियाँ) इत्यादि बनाएं जाते है। लाख शिल्प का कार्य करने वाले लखेरा या लखेरी जाति कहलाती है। इस जाति के स्त्री व पुरूष दोनों ही लाख शिल्प कला का प्रयोग परम्परागत तरीको से करते हैं। इन हस्तकला से निर्मित आभूषणों को स्त्री व पुरूष दोनो ही धारण करते है। अतः जनजातियों की यह लोक कला भारत की लोक संस्कृति की बहुमूल्य धरोहर है।

उपर्युक्त कलाओं से सिद्ध होता है कि ये समस्त कलाएँ भारत की जनजातीय समुदायों के द्वारा पीढ़ियों से निरंतर चली आ रही है और इन कलात्मक वस्तुओ में आदिवासियों के पौराणिक मान्यता विश्वास एवं शैली को विशेष स्थान प्राप्त है। जिससे भारत की लोक संस्कृति का अस्तित्व बना हुआ है।

भारत की दो प्रमुख जनजातियाँ एवं उनकी संस्कृति

भारत की संस्कृति के संदर्भ में कल्पनाओं या विचारो का गंभीरता से विश्लेषण, अन्वेशण करने पर पता चलता है कि भारतीय संस्कृति किसी एक जाति से उत्पन्न नही हुई है। जो जाति जितनी

प्राचीन होगी और काल के प्रवाह को झेलती हुई वर्तमान तक चल लेगी, निश्चय ही उसकी प्रकृति सामयिक होगी। मनुष्य की सभ्यता तथा संस्कृति का जन्म भारतवर्ष में ही हुआ है और वर्तमान युग में भी हमारे देश ने मनुष्य की शिष्टता एवं विचार को उदीयमान (प्रगतिशील) करने वाले सार तत्व एवं पौराणिक मान्यताओं को प्रभावित बनाए रखा है। भारत की लोक संस्कृति ही मनुष्य की मूल संस्कृति कहलाती है जिसमें विभिन्न जाति एवं जनजातियों का अंश विद्यमान (मौजूद) है, भारत की लोक संस्कृति विभिन्न जाति अथवा जनजातियों की कलाओं एवं प्रथाओं से निर्मित एक ऐसा अद्भुत रस है जिसका स्वाद जीवन में सजीवता एवं अतः मन को प्रफुल्लित कर देता है।

गोंड जनजाति – गोंड भारत की सर्वाधिक जनसख्या वाली जनजाति है। रामायण और महाभारत में भी गोंडो का उल्लेख किया गया है मध्य प्रदेश के मध्य एवं दक्षिण भाग म संभवतः 9 वी से 13वी सदी में इनका आगमन गोड़ो की अधिकता के कारण यह क्षेत्र गोंडवाना कहलाता था। मुख्यधारा के इस उन्नतिशील समाज से पृथक अभागा (विपत्ती ग्रस्त) जीवन व्यतीत करने वाली इस जनजाति का कला एवं संस्कृति का विस्तार काफी संपन्न नजर आता है। सुष्ठु (सुन्दरता) अलंकरण की वस्तुओं के प्रयोग के साथ सैनिक दक्षता के विशेष गुण से भी गोंड जनजाति सिद्ध एवं पूर्ण विकसित है।

गोंड जनजाति की संस्कृति का परिचय अनेक रहन सहन एवं सामाजिक, धार्मिक अनुष्ठानों से मिलता है। इनके यहां स्त्रियाँ गहने एवं गोदना से स्वयं को सजाने सवारने की विशेष प्रथा का पालन करती है। गोंडो के गहनो मे पीतल मोती और मूँगा अत्यधिक प्रचलन में है। घर के वृद्ध पुरूष का विशेष आदर किया जाता है। और सभी उसकी आज्ञा मानते है। गोंड जनजाति की संस्कृति की विशेष छवि इनके द्वारा मनाए जाने वाले परम्परागत उत्सव हैं। ये पर्व है – बिदरी जवारा मडई आदि। त्यौहारो एवं फसल की कटाई के बाद अपनी खुशियों को एक–दूसरे के साथ बांटने के लिए ये विभिन्न प्रकार के पारम्परिक नृत्य करते है, ये नृत्य करमा, सैला, सुआ, दीवारी, गैड़ी रीना आदि प्रमुख है। इसके अलावा अनकी धार्मिक आस्था जिसमें प्राचीन देवी–देवता, एवं पूर्वजों की पूजा और टोटम का विशेष महत्व है, इन सभी मान्यताओं के प्रति दृढ़ आस्था ही गोंड जनजातियों की संस्कृति है। जो भारत की लोक संस्कृति का अग है।

भील जनजाति –

भील भारत की तीसरी सबसे बड़ी जनजाति है। भील शब्द द्रविण भाशा के बील या वील से बना है जिसका अर्थ है 'धनुष' भीलो के द्वारा धनुष का प्रयोग प्रायः सभी पुरूष करते है यह उनके वस्त्र, आभूषण का एक हिस्सा है। इसलिए ये भील कहलाते है आज तीरंदाजी को भू–मण्डलीय खेलो में विशेष स्थान प्राप्त है तथा इन कलाओ की प्रस्तुति को भी लाभ के नजरिये से देखा जाने लगा है और यही तीरंदाजी कला का ज्ञान भीलो के पास अति प्राचीन काल से है, जिसे इन्होंने बिना किसी लोभ लालच के अपनी संस्कृति के रूप में बचा कर रखा है। इससे भीलों की कला में छुपी श्रद्धा एवं निर्मलता देखने को मिलती है।

धार्मिक दृष्टि से भील प्रकृति बाद होते है। बहुदेवत्ता वाद, पूर्वजों के प्रति आस्था भीलों में विशेष रूप से देखने को मिलती है एवं सामाजिक अनुष्ठानों जैसे जन्म विवाह त्यौहार आदि में होने वाले सामूहिक नृत्य जैसे भगोरिया, डोहा, बड़वर, धूमर गौरी आदि है। भीलो के परम्परागत त्यौहार है, गल भगोरिया, चलावणी, जातरा इत्यादि। भारत की लोक संस्कृति के निर्माण में इन अनुष्ठानों एवं त्यौहारो का विशेष महत्व है।

अध्ययन और अध्यापन के चल पर जनजातियों की संस्कृति के बारे में जानकारी प्राप्त की जा सकती है। परन्तु जनजातिय संस्कृति के गहन अध्ययन के लिए इस जनजातीय क्षेत्रों में जाकर इनके साथ रहकर इनके उत्सवों और अनुष्ठानो का प्रत्यक्ष अवलोकन करके ही इनकी संस्कृति का आनंद लिया जा सकता है। इन जनजातियों की सांस्कृतिक गतिविधियाँ एवं कलाएँ भारत की लोक संस्कृति की प्राण वायु है। भारत की लोक संस्कृति को विश्व में ख्याति दिलाने में इन जनजातियों की आस्था एवं परम्पराओं की अहम भूमिका है।